“भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद का सिद्धान्त एवं नौकरशाही का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन”

शोध सारांश

पीएच0डी0 उपाधि (विधि) हेतु प्रस्तुत

शोध छात्र

शशि शेखर सिंह चौहान

पर्यवेक्षक

डॉ0 अनिरूद्ध राम

आई0आई0एम0टी0 विश्वविद्यालय

गंगा नगर मेरठ, उत्तर प्रदेश

2021–2022

"भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद का सिद्धान्त एवं नौकरशाही का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन"

1.1 प्रस्तावना

देश के प्रशासन में संघ और राज्यों की सेवाओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी देश का प्रशासन वहाँ के कुशल लोक सेवकों पर निर्भर करता है। संघात्मक संविधान में इनका विशेष महत्व है। भारत जैसे लोकतंत्रात्मक राष्ट्र में प्रशासन सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण तो निश्चय ही जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले मंत्रियों या मंत्रिमण्डलों द्वारा किया जाता है परन्तु इन नीतियों का कार्यान्वयन केवल योग्य, प्रशिक्षित, अनुशासनबद्ध और चरित्रवान सिविल सेवकों द्वारा ही सम्भव है। एक ओर तो यह आवश्यक है कि इन कर्मचारियों को निष्ठा और निर्भीकता से अपना कर्तव्य निभाने के लिए सक्षम रखने के हेतु यह संरक्षण प्रदान किया जाए कि इन्हें कोई वरिष्ठ अधिकार या अनुचित आशय से प्रेरित होकर किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सके, परन्तु दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि राज्य के निकम्मे, अयोग्य या भ्रष्ट कर्मचारियों को निकालने में तथा सेवाओं सम्बन्धी नीतियों को समय–समय पर परिष्कृत या परिवर्तित करने में असमर्थ न हो जाये। क्योंकि राज्य के इस सामर्थ्य का प्रयोग लोकहित के लिए आवश्यक है। इन्हीं सब सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए संविधान के भाग 14 में संघ और सेवाओं के सम्बन्ध में कुछ विशेष उपबन्ध किए गये हैं।

सिविल सेवा की संकल्पना अब की या हाल ही की नहीं है। सरकारों को चाहे सम्राट, एकाधिपति या गणतन्त्रात्मक हो, काम करना है तथा प्रशासन और सरकार के विभिन्न कृत्यों को करने के लिए बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होती है और सदैव ही उनकी आवश्यकता रही है चाहे उनका सिविल सेवा के रूप में गठन हुआ हो अथवा नहीं। सम्पूर्ण इतिहास में विश्व की प्रत्येक राजधानी और देश में ऐसे व्यक्तियों का समूह है अथवा नहीं क्योंकि किसी भी एक व्यक्ति के लिए स्वयं देश पर शासन करना और प्रशासन के सभी क्रियाकलापों की देखभाल करना सम्भव नहीं है। इतिहास में यह बात सदैव ही रही है और इसलिए वह इंग्लैण्ड और भारत में भी रही है।

इंग्लैण्ड में क्राउन के सभी लोकाधिकारी और कर्मचारी क्राउन के प्रसादपर्यन्त अपनी नियुक्तियाँ धारित करते हैं और उनकी सेवाएं कोई भी कारण बताए बिना स्वेच्छया समाप्त की जा सकती है। प्रसाद–सिद्धांत अभिव्यक्ति क्राउन के इस अधिकार को दर्शाती है। तथापि यह अधिकार संसद द्वारा पारित विधान द्वारा अन्यथा उपबन्धित की गयी बात के अध्यधीन होता है चूंकि यूनाइटेड किंगडम में संसद को विधायी शक्ति प्राप्त है।

भारत में प्रसादपर्यन्त सिद्धान्त को अनु0 310(1) में अधिनियमित कर दिये जाने से संवैधानिक मंजूरी प्राप्त हो गयी है। इंग्लैण्ड के समान भारत में इसे संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अधीन नहीं किया गया है वरन् इसे संवैधानिक प्राविधानों के अधीन ही किया गया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 310 खण्ड (1) में प्रसाद के सिद्धान्त को सांविधानिक स्थिति प्रदान की गयी है। इस सिद्धान्त को संसद द्वारा बनाए गये किसी विधि के अधीन नहीं किया गया है, वरन् इसे सांविधानिक प्राविधानों के अधीन ही किया गया है।

इस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष सम्बन्ध सरकारी कर्मचारियों की पदावधि से है। 'चैम्बन शब्द कोष' में पदावधि शब्द की व्याख्या धारण करने के समय[1] के रूप में की गयी है। आक्सफोर्ड डिक्शनरी में भी इसे अधिकारी के पद धारण की अवधि से जोड़ा गया है।[2] शब्दकोषों में दिये गये अर्थों से यह अर्थ ध्वनित होता है कि पदावधि शब्द का तात्पर्य उस समय से है, जब तक कोई लोकपद का धारक अपना पद धारण करता है।

प्रसाद के सिद्धान्त का प्रथम बार विधायन के रूप में प्रयोग भारत सरकार अधि0 1919 के धारा 96–बी में किया गया था, परन्तु उस धारा में सिविल सेवकों की पदावधि शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था। इसका मुख्य कारण यह था कि सिविल सेवकों की पदावधि के साथ–साथ उनकी भर्ती सेवा शर्तों, वेतन भत्ता, पेंशन इत्यादि की भी चर्चा धारा 96–बी में की गयी थी।

1935 के भारत सरकार अधि0 के धारा 240 में सिविल सेवक के रूप में भारत में भर्ती कर्मचारियों की पदावधि शब्द की चर्चा की गयी थी। अनु0 310 में पदावधि तथा राज्य के अन्तर्गत सेवा करने वालों की पदावधि शब्द का प्रयोग होता है। अतः अनु0 310 खण्ड (1) में सरकारी कर्मचारियों को राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसाद का विषय बनाया गया है, परन्तु प्रसाद के सिद्धान्त को सांविधानिक प्राविधानों के अन्तर्गत रखा गया है।

गोल्ड बनाम स्टूअर्ट[3] के मामले में प्रीवी कौंसिल की ज्यूडिशियल कमेटी ने आगे यह भी अभिनिर्धारित किया कि जहाँ विनियमों द्वारा कोई सिविल सेवा स्थापित की जाती है

---

1 चैम्बर्स ट्वन्टियथ सेन्चुरी डिक्शनरी 1982 पेज 1391
2 आक्सफोर्ड एडवान्स जर्नरर्स डिक्शनरी 1989 पेज 1324
3 एल0आर0 (1896) ए0सी0 575

और ऐसे विनियमों द्वारा सिविल सेवा के सदस्यों के लिए अर्हताएं विहित की जाती हैं और उन्हें पदच्युत करने की शक्ति पर कुछ निर्बन्धन अधिरोपित किये जाते हैं वहाँ ऐसे विनियमों को लोक कल्याण के लिए बनाया हुआ माना जाना चाहिए।

इस स्थिति को कि प्रसाद का सिद्धान्त क्राउन के किसी विशेष परमाधिकार पर आधारित नहीं है, अपितु लोकनीति पर आधारित है, इसे न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य और बनाम बाबूराम उपाध्याय[1] और मोती राम डेका और अन्य बनाम जनरल मैनेजर एन0ई0एफ0 रेलवे मालीगाँव पंडू और अन्य[2] के मामले में स्वीकार कर लिया है। इस न्यायालय ने इस सिद्धान्त को भी स्वीकार किया है कि सरकारी कर्मचारियों द्वारा उनके कर्तव्यों के सम्यक निर्वहन में भी समाज का हित है।

रोशन लाल टण्डन बनाम भारत संघ[3] के मामले में न्यायाधीश रामास्वामी ने सरकारी कर्मचारी की विधिक संविदा से अधिक हैसियत की है। हैसियत का प्रमाण चिन्ह लोक विधि द्वारा आरोपित अधिकारों और कर्तव्यों के विधिक सम्बन्ध को उपलब्धि और उसकी सेवा शर्तें जो कानून या कानूनी नियमों द्वारा शासित होती है, कर्मचारी सम्पत्ति के बिना सरकार द्वारा एकपक्षीय रूप से परिवर्तित की जा सकती है। यह सही है कि अनु0 311 अनु0 310 के अधीन राष्ट्रपति और राज्यपाल को दिये गये पद से हटाने की शक्ति पर संवैधानिक निर्बन्धन अधिरोपित करता है, किन्तु यह बात स्पष्ट है कि सरकार और उसके कर्मचारी के बीच सम्बन्ध मालिक और उसके कर्मचारी के बीच सेवा की साधारण संविदा जैसी नहीं है, विधिक सम्पूर्ण रूप से कुछ भिन्न बात है और हैसियत की प्रकृति में भी कुछ भिन्न है। वह पक्षकारों के बीच स्वेच्छया किये गये पूर्ण रूप से संवैधानिक सम्बन्ध से अधिक है हैसियत (पद) के कर्तव्य विधि द्वारा नियत किये जाते हैं और इन कर्तव्यों का पालन कराने में समाज का हित है विधिशास्त्र की परिभाषा में हैसियत किसी ऐसे समूह की सदस्यता की शर्त है जिसकी शक्तियाँ और कर्तव्य अनन्य रूप से विधि द्वारा अवधारित किये जाते है न कि सम्बन्धित पक्षकारों के बीच करार द्वारा।

1 (1961) 2 एस0सी0आर0 679
2 (1964) 5 एस0सी0आर0 683
3 (1968) एस0सी0आर0 185

मंत्री नीतियाँ बनाते हैं और विधानमण्डल विधियाँ अधिनियमित करते हैं और वह ढंग अभिकथित करते हैं जिनमें ऐसी नीतियाँ कार्यान्वित की जायेगी और विधान का उद्देश्य पूरा हो सके। बहुत से मामलों में किसी कल्याणकारी राज्य में जैसा हमारा है, ऐसी नीतियाँ और कानून सामाजिक आर्थिक सुधार और गरीबी तथा अलाभप्रद वर्गों को ऊँचा उठाने के लिए आवश्यक है। तथापि इन बातों की प्रकृति से इन नीतियों और अधिनियमितियों की दक्षतापूर्वक और प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने का काम सिविल सेवाओं पर आधारित होता है। इसलिए जनता ऐसी सेवाओं की दक्षता और विश्वसनीयता में अधिक हितबद्ध होती है। सरकारी कर्मचारियों को लोक–निधि से वेतन का संदाय किया जाता है। लोक–निधि में प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष करों के माध्यम से अंशदान देता है इसलिए उन कर्मचारियों जिन्हें जनता द्वारा वेतन का संदाय किया जाता है और जिन पर लोक कल्याण के लिए लोक प्रशासन की जिम्मेदारी डाली जाती है, उत्तरदायित्व की भावना से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए, किन्तु किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने कर्तव्यों का सद्भावपूर्वक और सावधानीपूर्वक निर्वहन करने के लिए उसे पदावधि की सुरक्षा की भावना अवश्य होनी चाहिए। हमारे संविधान के अधीन यह सुरक्षा अधिनियमों और अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गये नियमों द्वारा उपबन्धित की गयी है और पदच्युति पद से हटाने या पंक्ति में अवनत के दण्डों के सम्बन्ध में रक्षोपाय अनु0 311 खण्ड (1) और (2) में उपबन्धित किये गये हैं। तथापि सुरक्षा लोकहित और लोक कल्याण के लिए इतनी अधिक है कि ऐसे सरकारी कर्मचारी को सेवा में बने नहीं रहने देना चाहिए जो अकुशल बेईमान या भ्रष्ट है अथवा सुरक्षा के लिए जोखिम बन गये हैं और उनके द्वारा अधिनियमों और अनु0 309 के अधीन बनाए गये नियमों और अनु0 311 द्वारा उन्हें दिये गये संरक्षण का लोकहित और लोककल्याण के प्रतिकूल दुरूपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अनु0 310(1) में अन्तर्विष्ट प्रसाद का सिद्धान्त अनु0 311 के खण्ड (1) और (2) द्वारा सिविल कर्मचारियों को दिया गया संरक्षण और अनु0 311 के खण्ड (2) के अधीन संरक्षण का प्रत्याहरण लोकनीति और लोकहित के आधार पर संविधान में उपबन्धित किये गये हैं और इसीलिए लोक कल्याण के लिए है।

अनु0 310(1) के अधीन राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसाद का प्रयोग राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा अभिव्यक्त रूप से किया जायेगा या इसका प्रयोग प्रत्यायोजिती द्वारा या

संविधान के अधीन या किसी अधिनियम द्वारा या अनु0 309 के अधीन बनाए ये नियमों द्वारा सशक्त किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा किया जा सकता है। यह प्रश्न बाबूराम उपाध्याय[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने खण्ड न्यायपीठ के समक्ष विचारार्थ आया था। न्यायालय ने बहुमत से (न्यायालय का निर्णय न्या0 सुब्बाराव, जैसा कि वे उस समय थे ने दिया था) सात सिद्धान्तों के रूप में अपने निष्कर्षों का उल्लेख किया था। इस प्रकार है–

1. भारत में हर व्यक्ति जो संविधान के अनु0 310 में वर्णित किसी लोक सेवा का सदस्य है, इसमें अन्तर्विष्ट अभिव्यक्त उपबन्धों के अधीन रहते हुए यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करता है।

2. प्रसाद के किसी लोक सेवक को पदच्युत करने की शक्ति अनु0 154 की परिधि से बाहर है। अतः राज्यपाल इसे किसी अधीनस्थ अधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं कर सकता है और संविधान द्वारा विहित रीते से स्वयं इसका प्रयोग करना होगा।

3. यह पदावधि संविधान के अनु0 311 में वर्णित प्रतिबन्धों या सीमाओं के अध्यधीन है।

4. संसद या राज्यों के विधानमण्डल इस पदावधि अल्पीकरण या उपान्तरण करने वाली ऐसी कोई विधि नहीं बना सकती जो अनु0 311 द्वारा यथाविशेषित अनु0 310 के अधीन राष्ट्रपति या राज्यपाल को प्रदत्त अध्यारोही शक्ति पर अतिक्रमण करती हो।

5. संसद या राज्यों के विधानमण्डल ऐसे किसी सदस्य की सेवाशर्तों को विनियमित करने वाली कोई विधि बना सकते हैं, जिसके अन्तर्गत अनुशासनिक कारवाई के रूप में कार्यवाहियाँ भी शामिल हैं, किन्तु ऐसी विधि से संविधान के अनु0 311 के साथ पठित इसके अनु0 310 के अधीन राष्ट्रपति या राज्यपाल की शक्तियों पर प्रभाव न पड़ता हो।

6 संसद और विधानमण्डल भी संविधान के अनु0 311 में लेखबद्ध युक्तियुक्त अवसर के सिद्धान्त की परिधि और अन्तर्वस्तु को अधिकथित और विनियमित करने वाली विधि बना सकते हैं किन्तु उक्त विधि न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन रहेगी।

---

1 (1961)2 एस0सी0आर0 679, 696

7. यदि विधानमण्डल पूर्वगामी अनुज्ञेय सीमाओं के अन्तर्गत कोई कानून बना सकते हैं तो उसके अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी प्राधिकारी द्वारा बनाए गये नियम भी उसी प्रकार उक्त सीमाओं के अन्तर्गत रहते हुए प्रभावी होंगे।

नौकरशाही अत्यन्त व्यापक एवं अनेक अर्थों से भरा हुआ शब्द है फलतः इसकी अनेक परिभाषाएं भी की गयी हैं, इस शब्द के द्वारा हम नौकरशाही संस्था, एक संगठित समाज, एक विचारधारा, एक जीने का तरीका और मुख्यतः प्रशासन की कार्य पद्धति का संज्ञान करते हैं, परन्तु प्रारम्भ से ही यह शब्द मुख्यतः सरकारी अधिकारियों के लिए प्रयुक्त होता रहा है।

बिन्सेट डेगोरनी (Vincent Degourney) को इस शब्द का जनक माना जाता है, जिन्होंने 1745 में इस शब्द का प्रयोग किया था, और इस शब्द का आशय उन अधिकारियों से लगाया गया जिनका कार्य एवम् स्वरूप हस्तक्षेप करना तथा अपने कार्यों को शीघ्र पूरा करना था।[1] सन् 1813 में जर्मन भाषा के शब्द कोष में नौकरशाही शब्द का तात्पर्य ऐसे अधिकारी नागरिकों पर प्रयोग करने के लिए अपने पास रख लेते हैं।

सामान्य अर्थ में नौकरशाही शब्द का तात्पर्य कार्यालय एवम् अधिकारियों द्वारा सरकारी प्रशासन को चलाना है। आधुनिक राज्य में सरकारी कार्य में सुधार का लक्ष्य ही सिविल सेवा का कार्य नहीं है, वरन् आधुनिक राज्य का प्रशासन सिविल सेवा के बिना असम्भव सा है। सभी प्रजातान्त्रिक राज्यों में सिविल सेवा के सदस्यों की संख्या में वृद्धि इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि सिविल सेवा या नौकरशाही आधुनिक राज्य की सर्वप्रथम संस्था बन चुकी है। यह संस्था अन्य आधुनिक राज्य की संस्थाओं की तरह पाश्चात्य संस्कृति की तकनीकी एवम् मशीनी तत्वों के फलस्वरूप विकसित हुई है। वर्तमान राज्य में बढ़ते राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश को सुनिश्चित दिशा प्रदान करने के लिए प्रतिभा सम्पन्न लोगों की सेवाओं का उपयोग करना श्रमविभाजन के सामाजिक लाभ को जन–जन तक पहुँचाना तभी सम्भव हो सकता, जब आधुनिक राज्य प्रशासन तथा व्यवस्थापन को ईमानदार कर्तव्यपरायण, कर्मनिष्ठ सक्षम तथा प्रभावशाली लोगों द्वारा चलाया जाता। सिविल सेवक संवैधानिक संरक्षण का दुरूपयोग न करें, परन्तु उससे भी ज्यादा

---

1 ब्यूरोक्रेसी, द कैरियर ऑफ ए कान्सेप्ट 1979 न्यू देलही पेज 22

महत्वपूर्ण बात उस वातावरण के निर्माण की है, जहाँ वे ईमानदारी और निष्ठापूर्वक पक्षपातरहित एवम् भयरहित होकर अपने कर्तव्यों का पालन कर सके। यदि राजनीतिज्ञ अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए उनका दुरूपयोग करना बन्द कर दें तो संवैधानिक संरक्षण का दुरूपयोग सिविल सेवक भी नहीं कर सकेंगे।

इधर सिविल सेवकों को अपमानित कर, राजनीतिज्ञों की हाँ में हाँ न मिलाने की, सजा उन्हें देने की परम्परा हमारे देश में चल पड़ी है। मनमानी स्थानान्तरण, महत्वपूर्ण पदों से मुक्त करना, अमर्यादित ढंग से सेवा से बाहर करना या ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना जहाँ वे अपने कर्तव्यों का सक्षमता एवम् प्रभावकारी ढंग से निर्वाह न कर सके, जैसी अनेक घटनाएं देश में हो रही हैं। इन परिस्थितियों के लिए सिविल सेवकों को संविधान में कोई संरक्षण नहीं प्रदान किया गया है। तुलसीराम पटेल वाद[1] में इस बात को अत्यन्त जोर देकर कहा गया है कि सिविल सेवकों को 42वें संविधान संशोधन के बाद भी विभागीय अपील एवम् न्यायिक पुनरीक्षण के उपचार प्राप्त हैं। परन्तु व्यवहार में इस उपचार की प्राप्ति प्रायः असम्भव ही दिखती है। विभागीय अधिकारियों में अपने को प्रभावकारी और सर्वेसर्वा बनाए रखने की भावना, विभागीय बड़े अधिकारियों में सहयोगीपन का अहसास प्रशासन की निर्णय लेने की गोपनीय पद्धति जैसी प्रवृत्तियाँ विभागीय अपील के उपचार को व्यर्थ सिद्ध करती है।

लोक सेवकों को संविधान में पदविमुक्ति, पद से हटाये जाने तथा पंक्ति में अवनत किये जाने के सन्दर्भ में जो संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है, उन्हें विधि विधान कार्यों एवम् आचरण की अनुज्ञा का साधन नहीं बनाया जा सकता लोकहित के नाम पर प्राप्त संरक्षणों का, लोकहित के विरूद्ध ही प्रयोग किया जाय यह आशय संविधान निर्माताओं का कदापि नहीं था।

अतः आज इस बात की महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि लोक सेवकों को प्राप्त इस संवैधानिक पहलू पर भी गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय, जिससे अधिकार एवम् कर्तव्य सही अनुपात में अपनी भूमिका निभा सके।

---

1 ए0आई0आर0, 1985 एस0सी0 1416

भारतीय संविधान में नौकरशाही को दिये गये संरक्षण के उपर्युक्त सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं के सन्दर्भ में हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ज्यों–ज्यों विकास की गति बढ़ती है, त्यों–त्यों समाज में स्थिति संस्थागत ढाँचों में अलग–अलग परिवर्तन होते रहते हैं। आर्थिक, राजनीतिक विकास के साथ कार्यों में बढ़ोत्तरी होती है और यदि प्रत्येक कार्य के लिए अलग–अलग प्रशासनिक ढाँचे नहीं उपलब्ध होते हैं, तो विकास एवम् कार्य में असन्तुलन स्थापित हो जाता है, और कार्य करने की इकाई के रूप में नौकरशाही उतनी ही ज्यादा नियन्त्रित होगी, इसके विपरीत की स्थिति में नौकरशाही प्रभावशाली होगी और उसी का महत्व बढ़ेगा, राजनीतिक संस्थाएं पृष्ठभूमि में चली जायेगी। नौकरशाही पर नियन्त्रण के लिए जो भी संसदीय समितियाँ बनी हैं उनकी अकर्मण्यता इसका स्पष्ट प्रमाण है। भारत सहित विकासोन्मुख देशों की सामान्य स्थिति यही है कि धीरे–धीरे नौकरशाही हावी होती गयी हैं, और राजनीतिक संस्थाएं कमजोर होती गयी हैं, जिससे नौकरशाही के प्रभावशाली लोग राजनीतिक सत्ता के साथ षडयन्त्र कर सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को असंतुलित बनाए रखने में सफल हो गए हैं। अतः यदि नौकरशाही को नियन्त्रण में रखना है और संविधान की मर्यादाओं में बाँधना है तो देश में सक्षम, ईमानदार, सचरित्र एवम् कर्तव्यपराण राजनीतिज्ञों को लाना होगा, जो राजनीतिक ढाँचे को प्रभावशाली बनाकर नौकरशाही पर नियन्त्रण रख सकेगें, तथा प्रशासन को जनकल्याणोन्मुख बना सकेंगे।

1.2 शोध अध्ययन का उद्देश्य

विकासशील देशों का प्रशासन पश्चिमी राष्ट्रों की विरासत का पर्याय है अथवा इन देशों का राज्य प्रशासन पश्चिमी देशों के ढांचे के अनुरूप बनाया गया है। विकासशील देशों का प्रशासन स्वदेशी पाश्चात्य देशों की नकल होने के कारण सम्बन्धित विकासशील देशों की सामाजिक व्यवस्था से मेल नहीं खाता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि ऐसा प्रशासन उस देश की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित किया जाए। विकास प्रशासन की सफलता का आधार प्रशासनिक कुशलता है तथा प्रशासनिक कुशलता प्रशासनिक विकास का मुख्य चिंतन बिन्दु है। यदि विकास प्रशासन को लक्ष्योन्मुखी कार्योन्मुखी सिद्ध होना है तो प्रशासनिक विकास आवश्यक है। विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाएं राजनीतिक स्वतन्त्रता से पूर्व नियामकीय प्रवृति रही है जिसमें विकास के प्रति अनिच्छा तथा अक्षमता

दोनों व्याप्त है साथ में उन देशों के लोक सेवकों की मानव संसाधन क्षमताएँ भी उत्कृष्ट श्रेणी की नहीं है अतः सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार आवश्यक प्रतीत होता है।

नौकरशाही की सीमाएं हैं **वेबर** ने नौकरशाही में शक्ति संचयन पर अंकुश लगाने की बात की है। **एल्बो** ने भी यही विचार प्रस्तुत किया है। वेबर ने सत्ता तन्त्र के प्रभाव क्षेत्र को सीमित रखने के लिए तथा विशेषकर नौकरशाही के शक्ति संचयन पर अंकुश लगाने के लिए अनेक प्रकार के उपायों व व्यवस्थाओं पर विचार किया है। एल्बो नौकरशाही की 5 तरह की सीमाओं का वर्णन करते हैं–

(i) अधिशासी मण्डल

(ii) शक्तियों का पृथक्कीकरण

(iii) गैर पेशेवर

(iv) प्रत्यक्ष लोकतंत्र

(v) प्रतिनिधित्व

लोक प्रशासन आधुनिक राज्य का दर्पण है। यह मानव जीवन के बहुमुखी विकास की दिशा व दशा दोनों में ही लोक प्रशासन का अमूल्य योगदान है। लोक प्रशासन का उद्देश्य जनहित है। अधिक से अधिक जनता का हित हो इसके लिए प्रशासन में सुधार और नये वैज्ञानिक आविष्कारों की भी आवश्यकता है। शासन की विशाल संगठनात्मक ढांचे में लोक का वही महत्व है जो हमारे घर में बैठक का होता है। प्रो0 डोन्हम के अनुसार यदि हमारी सभ्यता का विनास होता है या असफल रहती है तो उसका मुख्य कारण प्रशासन की असफलता होगी। लोक प्रशासन दर किसी शासन की सफलता और विफलता निर्भर करती है। राज्य प्रशासन में सरकार की संरचना व कार्यों के बारे में एक सही व्यवस्थित और वैज्ञानिक ज्ञान निर्मित करने की क्षमता होती है। लोक प्रशासन का महत्व उसकी सर्वव्यापकता और सर्वमौलिकता के कारण भी है। लोक समस्याओं के समाधान हेतु विश्वसनीय सिद्धान्तों और तकनीकों का विकास लोक प्रशासन द्वारा होता है। लोक प्रशासन सभ्य समाज की पहली आवश्यकता है। राज्य प्रशासन कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने, विद्यार्थियों का कार्यरत एवं प्रशासनिक दृष्टिकोण के प्रति गतिशील करने व प्रशासकों

को पेशेवर योग्यता के साथ व्यवसायिक धारा में सम्मिलित होने के योग्य बनाने में बहुत ही उपयोगी रहा है। लोक कल्याणकारी राज्य एक ऐसा समाज है जिसमें जीवन के न्यूनतम स्तर प्राप्त करने का यकीन तथा मौका प्रत्येक व्यक्ति को मिलता है। इसलिए लोक कल्याण राज्य की स्थापना का भार नौकरशाही पर है।

1.3 शोध अध्ययन का महत्व

वर्तमान शोध प्रबन्धन नौकरशाही भारतीय संवधिान प्रसाद का सिद्धान्त का विषय उपरोक्त वर्णित परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए तैयार किया गया है। लोक प्रशासन राजनीति की एक व्यवहारिक शाखा है इसमें राज्य के प्रशासनिक या शासन के उस भाग का जो नीतियों के क्रियान्वयन से किस प्रकार से जुड़े हैं उनके ढांचे और उनकी कार्य प्रणाली संगठन इत्यादि का गहन अध्ययन किया जा सके इसलिए यह शोध किया जा रहा है। लोक सेवा के कार्य क्षेत्र उनकी सीमाएं, प्रशासकीय उत्तरदायित्व, नौकरशाही सगठन की समस्याओं का व्यवस्थित रूप से गहन अध्यन कर मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में प्रस्तुतकर्ता द्वारा अध्ययन हेतु सैद्धान्तिक (डॉक्ट्रिनल) एवं विश्लेषणात्मक (एनेलेटिकल) शोध प्रणाली को अपनाया गया है जिसके अन्तर्गत पदाधिकारिगों की समस्याओं का अध्ययन लोक सेवकों की राजनीतिक या वैयक्तिक दबावों से कैसे मुक्त रहे उसका विस्तृत अध्ययन है इस शोध में। संविधान के अध्याय 33 "संघ और राज्यों के अधीन सेवाएँ (अनु0 308–323) में लोक सेवकों के कार्यकाल, सेवा की शर्तें ओर संविधानिक संरक्षण से संबंधित उपबन्ध किया गया है उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

1.4 शोध अध्ययन का विषय क्षेत्र

लोक सेवकों का संघात्मक संविधान में विशेष महत्व है। प्रशासन सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण मंत्री मण्डल करता है किन्तु उनका क्रियान्वयन लोक सेवक ही करते हैं। इस शोध में लोकसेवकों को राजनैतिक या वैयक्तिक दबावों से कैसे मुक्त रखना है उसका अध्ययन कर रहे हैं। इस शोध में लोक सेवक सरकारी नीतियों का कैसे निष्पक्षता और स्वतन्त्रता से कैसे कार्यान्वित करते हैं उसका अध्ययन है इस शोध में संविधान में लोक

सेवकों के कार्यकाल सेवा की शर्तें और संवैधानिक संरक्षण से सम्बन्धित समुचित उपबन्ध किया गया है उसका गहन अध्ययन कर मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया।

1.5 साहित्य पुर्नविलोकन

हमारी राष्ट्रीयता राजनैतिक नेताओं और चुनाव पद्धति पर टिकी हुई नहीं है बल्कि इसकी बुनिया देश की नौकरशाही है हमारा देश ठीक–ठाक ढंग से चल रहा है तो केवल इसलिए क्योंकि हमारे पास एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित नौकरशाही व्यवस्था है जो एक खास तरीके से प्रशिक्षित है। देश का प्रशासन चलाने का कार्य एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है यह उन जिम्मेदारियों से कहीं बड़ी है जो उन राजनेताओं को 5 सालों के लिए मिलती है। इसलिए एक नौकरशाह के जीवन को इस तरह से सशक्त करना जरूरी हो जाता है जिससे उसका जीवन तनाव व रोगमुक्त रहे ताकि राष्ट्र अपने ही भार से दबकर चरमरा न जाए। इसलिए यह स्वाभाविक है कि इस विषय पर कई पाठ्यपुस्तकें, शोध, लेख प्रकाशित हुए हैं। वही शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख अपने सीमित विषयवस्तु के कारण विषय की व्यापकता देखते हुए बहुमूल्य होते हुई भी सीमित प्रासंगिकता के है विगत कुछ वर्षो से इस विषय पर भी शोध ग्रन्थ लिखे गये हैं। चूंकि कोई भी विषय का निरन्तर अध्ययन उसका आलोचनात्मक परीक्षण एवं विश्लेषण तथा समय–समय पर उसकी समीक्षा से नौकरशाही में सुधार का प्रथम सोपा है। अपितु वर्तमान में नौकरशाही कानून एवं इससे जुड़े महत्वपूर्ण बिन्दुओं को न्यायिक निर्णयों एवं सुसंगत संविधानिक प्राविधानों की सहायता से स्पष्ट करने का प्रयास करना मात्र है। जिसे शोध प्रबन्ध की समान परिसीमाओं के अन्तर्गत ईमानदारी एवं निष्ठा के साथ किया गया है।

1.6 परिकल्पनायें

1. वर्तमान में प्रशासनिक व्यवस्था का जरजर स्वरूप जनता की सुरक्षा के लिए पर्याप्त नहीं है।
2. वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार के मामलों की अधिकता।
3. प्रशासनिक सेवा के द्वारा राज्य की नीतियों को लोगों तक पहुँच पा रही है कि नहीं यह सुनिश्चित ना हो पाना।

4. आपराधिक गतिविधि में व्यवस्था लोगों पर प्रशासनिक नियन्त्रण का प्रभाव न होना।

5. महिलाओं से सम्बन्धित अपराधों के सम्बन्ध में प्रशासन का कमजोर वातावरण।

1.7 शोध अध्ययन की पद्धति

प्रस्तुत शोध प्रबन्धन एक सैद्धान्तिक अध्ययन है जिसके अन्तर्गत विश्लेषणात्मक विवेचनात्मक एवं सुझावात्मक, मूल्यात्मक पद्धतियों का प्रयोग निष्कर्षों एवं सुझावों को निस्तृत करने हेतु किया गया है इस शोध प्रबन्धन के लिए सामग्री प्राथमिक एवं द्वितीय दोनों स्त्रोंतो से एकत्र की गयी है सुसंगत शोध सामग्री विषय पर लिखी गयी टीकाओं, शोध प्रक्रियाओं, सन्दर्भग्रन्थों प्रकाशित लेखों उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के निर्णयों से संग्रहित की गयी है। शोधकर्ता ने इस विषय पर शोध प्रबन्धन के लिए अनुनवजन्य अनुसंधान के साथ–साथ सिद्धान्त सम्बन्धी सैद्धान्तिक अनुसंधान शोध पद्धति को अपनाया गया है। इस तथ्य के साथ की विधि की स्थिरता, निश्चितता वांछिय लक्ष्य है और सामाजिक मूल्यों को आगे बढ़ाने के लिए विधि शोधकर्ता के लिए प्राथमिक चिन्ता का विषय है। शोध अध्ययन के विधिक वाद का विश्लेषण विधिक व्यवस्था कानूनी प्रस्तावों को व्यवस्थित करना और कानूनी संस्थानों का अध्ययन करना शामिल हो। जैसा कि कानून समाज के लिए है यह समाज में संचालित होता है और इसलिए शोधकर्ता के लिए सामाजिक नीति तथ्यों और सामाजिक मूल्य का ज्ञान आवश्यक है। वर्तमान अध्ययन में शोधकर्ता का समाजशास्त्रीय डेटा द्वारा अपने विचारों का परिक्षिप करने का अवसर मिलता है। यह निश्चित रूप से शोध में मूल्य जोड़ देगा। इस अध्ययन में पुस्तकें कानूनी पत्रिकाओं लॉ जर्नल विविध वाद, सम्मेलनों की कारवाई, शोध प्रबन्धन, समितियों और आयोग की रिपोर्ट संगठन शब्दकोषों, विधियों पत्रिकाओं, मैनवल और समाचार पत्रों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। सामग्री एकत्रित करने के लिए इंटरनेट का उपयोग भी किया जाता है। शोधकर्ता ने इस सम्बन्ध में पहले विषय के अध्ययन द्वारा जानकारी एकत्रित किया फिर इस सम्बन्ध में अनुभवजन अनुसंधान प्रणाली का प्रयोग किया। यह

सिद्धान्त या प्रणाली किसी अनुभव व अवलोकन पर निर्भर करता है और इसलिए इसे प्रयोगात्मक प्रकार का शोध भी कहा जा सकता है। अतः शोधकर्ता ऐसे सवालों का जवाब देना चाहता है। क्या वे उस समाज के अनुकूल है जिसमें वह काम करे हैं। नयी समस्याओं के बारे में नागरिकता पैदा करता है। अनुभव जन अनुसंधान के शोध में सबसे पहले शोधकर्ता ने एक परिकल्पना को स्वीकार किया। यह सम्मावित परिणाओं के रूप अनुमान लगाया और फि उसकी परिकल्पना को साबित करने उसे खारिज करने के लिए पर्याप्त तथ्यों को एकत्रित किया।

1.8 शोध अध्ययन की रूपरेखा

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नौकरशाही विषय पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करके इसमें प्रकट कमियों की तरफ ध्यान आकर्षित करने के साथ ही साथ उसे दूर करने हेतु एक रूपरेखा प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है। इस शोध प्रबन्ध में प्रतिपादप विषय को कुल सात अध्यायों में विभाजित किया गया है–

अध्याय–1 प्रस्तावना

अध्याय–2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अध्याय–3 लोकतंत्र में नौकरशाही की भूमिका

अध्याय–4 सेवा सम्बन्धी नियम का प्रावधान

अध्याय–5 प्रसाद का सिद्धान्त एक सिंहावलोकन

अध्याय–6 नौकरशाही को संवैधानिक सुरक्षा

अध्याय–7 निष्कर्ष एवं सुझाव

BIBLIOGRAPHY

I. ARTICLES

1. Annanthacharti, A - Public Interest vs, Service Interest, The Hindustan Times, New Delhi, 20th January, Page 12.

2. Chaterjee, Raj - Pillars of Democracy, The Indian Express of 30th June, 1992, Page 8.

3. Chauhan, V.S. - Justice by Tribunals-A brief comments on the Administrative Tribunals Act, 1985, A.I.R. 1986 Page 56.

4. Desh Mukh, B.G. - Bureaucracy at a Watershed Formidable Challenge of Adjustment, The Times of India, 10 April 1992 Page 8.

5. Gupta, Sharad - Officers urge end to U.P. Govt. is suspension Power, Indian Express 10th October, 1995, Page 9.

6. Inderjit - Feudal Democracy, wanted Law for Political Parties, The Times of India, New Delhi, 4th Sept. 1996, Page 12.

7. Jain, M.P. - Blass in Administrative Law 13, J.I.L.J. 1971, Page 362.

8. Lal, Hardwari - Twilight of Democracy, The Hindutan Times, New Delhi 23rd December 1995, Page 13.

9. Maheshwari, S.R. - Bureaucracy in India, Employment News 4th to 10th April, 1992, Page 3.

10. Malhotra, Inder - Political commentary, Ruling a key Institution, The Times of India, 9th July 1992, Page 8.

11. Nair, T.N. - For once they're not playthings of Politicians, The Hindustan Times, New Delhi, 14th December 1996, Page 7.

12. Raina, Jai - As in the Govt. so is the Civil Serive, The Hindustan Times, New Delhi, 16th December 1996, Page 9.

13. Rebeiro, Julio - The Dilemma of the honest bureaucrat, The Sunday Times of India, Lucknow, 10th Juily, 1994, Page 11.

14. Sigh, Sanjai - Puppets are needed here, not administrators, The Hindustan Times, New Delhi, Ist December 1996, Page 7.

15. Srivastava, Krishna - Bureacracy needs image correction, The Hindutan Times, New Delhi, March 30, 1997, Page 12.

16. Suraya, Jug - Climate of Corruption, The Strange case of Govind Khairnar, The Times of India, Lucknew, 11th July 1994, Page 6.

17. Swaminathan - A Civil Srvant Rights to be represented in Discipliary Proceeding 16, J.I.L.I. 1974, Page 282.

18. Vijay, Karan - Man for Home, The Times of India, 30 March 1993, Page 12.

19. Wade H.W.R. - Twilight of Natural Justice 67, L.Q.R. 1951, Page 108.

- Unlawfull Administrative action void or viidable, Part I and II 83 and 84 L.Q.R.

- Natural Justice and Disciplinary Enquiry 84, L.Q.R. 451.

II. BOOKS -

1. Allen, C.K. - Law and Order 1956.

2. Basu, D.D. - Limited Government and Judicial Review, 1972

3. Chaturvedi, R.G. - Law and Procedure of Department Enquiries and Discipliانry Action, 1982.

4. Dicey, A.V. - Introduction to the study of The Law of the Constituion, 1982.

5. Eva etzioni halavey - Bureaucracy and Democracy, 1983.

6. Galanter, Mare, - Compelling Equalities, 1984

7. Ghaiye, B.R. - Law and Procedure of Department Enquiries in Private and Public Sector, 1988.

8. Jain, M.P. - Indian Constitution Law, 1983.

9. Jain, M.P. & S.N. - Principle of Administrative Law.

10. Jenning, Ivor - The Law and the Constitution, 1979.

- Cabinet Government, 1963.

11. Jois, M. Rama - Services under the State, 1987.

12. Lord Hewart - New Despitism, 1927, England.

13. Laski, H.J. - Parliamentary Government in England, 1963.

14. Massey, I.P. - Administrative Law

15. Mathew, K.K. - Democracy, Equality and Freedom, 1978.

16. Ramachandran, V.G. - Administrative Law, 1984.

17. Rao, S.B. - Domesttic and Departmental Enquiry, 1988.

18. Saharay, H.K. - Cases and Materials on the Constitution of India, 1987.

19. Seervai, H.M. - Constitution of India, Vol. II and Supplement 1984 and 1988.

20. Shukla, V.N. - Constitution of India

21. Tataski, L. - Martin cryigier-The revolution betrayed from Tatasky to the New Class.

22. Tripathi, P.K. - Spotlights on Constitutional Interpretation, 1972.

23. Tripathi, P.K. - Bhartiya Sanvidhan ke Pramuk Tatva, 1981.

24. Walker, E. - The Development of Public Services in Europe, 1660-1930.

25. Wade H.W.R. - Administrative Law.

III. DICTIONARY -

1. Walker, David M. - The Oxford Companion to Law, 1980.
2. Chamber's - Twentieth Century Dictionary, 1982.
3. Oxford - Advance Leaners Dictionary, 1989.

IV. MAGAZINES

1. India Today
2. Maya
3. Pragya (Magazine of Banaras Hindu University)
4. Law and Political Times

V. NEWS PAPERS

1. The Times of India, New Delhi and Lucknow
2. The Hindustan Times, New Delhi
3. The Indian Express, New Delhi
4. Nav Bharat Times, New Delhi
5. Dainik Jagran, Varanasi and Allahabad
6. Employment News (Weekly) New Delhi.

VI. REPORTS

1. Indian Staturory Simkomn Commission Report 1930, Vol. 1, Para 290.
2. Reports of the joint Select Committee on Indian Constitutional Reform (1934), Para 277.
3. Shah Commission Report 1977.
4. Royal Commision on Civil Service (1929), Page 5.
5. Constituent Assembly Debates.